श्लोक 1

श्रीयः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद् हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥

अनुवाद:
श्रीहरि, जो लक्ष्मीपति हैं और समस्त विश्व के पालक हैं, वसुदेव के घर में निवास करते हुए, आकाश से उतरते हुए स्वर्ण आभा वाले शरीर वाले ऋषि (नारद मुनि) को देखते हैं।

श्लोक 2

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वं ज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥

अनुवाद:
जनता देखती है कि अग्निदेव का शिखर, जो स्वाभाविक रूप से ऊर्ध्वगामी होता है, नीचे की ओर झुक रहा है। यह दृश्य देखकर सभी हैरान हैं और सोचते हैं कि यह क्या हो रहा है।

श्लोक 3

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरस्ततः शरीरिति विभावितकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥

अनुवाद:
लोगों ने समझा कि यह प्रकाश का समूह नहीं, बल्कि एक व्यक्तित्व है। क्रमशः उस विभु (श्रेष्ठ व्यक्ति) को पहचान लिया गया, जो नारद मुनि हैं।

श्लोक 4

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।
क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना॥

अनुवाद:
उनके (नारद मुनि के) केश कर्पूर के समान उज्ज्वल थे और उनकी जटाएँ सफेद आभा लिए थीं। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था जैसे हाथी के दांतों से बना कोई चमकदार पदार्थ।

श्लोक 5

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥

अनुवाद:
उनकी जटाएँ कमल के केसर के समान चमकीली और शरद ऋतु के चंद्रमा की किरणों जैसी थीं। उनके बाल ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो हिमाच्छादित पर्वत की शिखर लताओं से सजी हों।

श्लोक 6

पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥

अनुवाद:
नारद मुनि पिंगल (पीली) मुनियों की रस्सी से बंधा हुआ, सुंदर मृगचर्म धारण किए हुए, और स्वर्ण के आभूषण पहने हुए थे। उनका स्वरूप शिव के वस्त्र को भी मात दे रहा था।

श्लोक 7

विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवाततैर्हिरण्यमयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं धनान्ते तडितां गुणैरिव॥

अनुवाद:
नारद मुनि के शरीर पर सोने की लताओं जैसे यज्ञोपवीत सुशोभित थे। उनकी धवलता ऐसी थी जैसे मेघों के बीच बिजली चमक रही हो।

श्लोक 8

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसिताङ्गसङ्गिना।
चकासतं चारूचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्॥

अनुवाद:
उनके सुंदर और सूक्ष्म नेत्र, कमल के तने की चमक से युक्त, अत्यंत आकर्षक लग रहे थे। उनका वस्त्र ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इंद्र के वाहन ऐरावत की सफेदी।

श्लोक 9

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलांगुष्ठनखांशुभिन्नया।
पुरः प्रवालैरिव पूरितार्द्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया॥

अनुवाद:
नारद मुनि की वीणा के तार से बजाए गए सुरों के प्रभाव से उनके अंगुष्ठ (अंगूठे) की चमक बढ़ गई थी। उनके हाथों में चमचमाती क्रिस्टल की माला ऐसे शोभित हो रही थी जैसे प्रवाल (मूंगा) की माला।

श्लोक 10

रण्द्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिनाश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मूहुर्मूहुः॥

अनुवाद:
जब वीणा के तार आकाश में हल्की आवाज उत्पन्न कर रहे थे, तब उन सुरों की विशेषता और माधुर्य नारद मुनि बार-बार ध्यान से सुन रहे थे।

श्लोक 11

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानती-नतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः।
समासदत् सादितदैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः॥

अनुवाद:
नारद मुनि, जो सभी ज्ञान और इंद्रिय निग्रह के भंडार हैं, आकाश से उतरे और उन देवताओं की सभा में पहुंचे, जिन्होंने दैत्यों का नाश कर दिया था।

श्लोक 12

पतन् पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरो स्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥

अनुवाद:
जब तपोनिधि नारद मुनि गिरने वाले थे, तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पर्वत से बिजली गिर रही हो। उसी समय अच्युत (श्रीकृष्ण) तुरंत उठ खड़े हुए।

श्लोक 13

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथंचित्फणिनां गणैरधः।
न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले॥

अनुवाद:
सर्पों के समूह ने अपने फण उठाकर किसी तरह नारद मुनि को नीचे गिरने से रोका। उसी समय वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने उन्हें आदरपूर्वक अपने चरणों से पृथ्वी पर स्थापित किया।

श्लोक 14

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्य्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण ने नारद मुनि का उचित स्वागत और पूजा की। वे संत, जो पुण्य से युक्त होते हैं, केवल प्रेम और सम्मान से ही किसी के घर आते हैं।

श्लोक 15

न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषारासाराञ्जनपर्वताविव।
स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनिश्चिरंतनस्तावदभिन्यवीविशत्॥

अनुवाद:
जब तक लोगों ने नारद मुनि को देखा नहीं, तब तक वे पर्वत के समान विशाल और स्थिर प्रतीत हुए। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने हाथों से आसन दिया।

श्लोक 16

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे।
श्रितोदयाद्रेरभिसायकमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसो भिरामताम्॥

अनुवाद:
कृष्ण, जो कंस के वधकर्ता हैं, नारद मुनि के सामने आसीन हुए। उनका स्वरूप ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उदयगिरि से चंद्रमा निकल रहा हो।

श्लोक 17

विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।
ग्रहीतुमार्यान् परिचर्यया मूहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण ने नारद मुनि की पूजा और सम्मान किया, जिससे मुनि अत्यंत प्रसन्न हुए। महानुभाव सदैव दूसरों की सेवा से प्रसन्न होते हैं।

श्लोक 18

अशेषतीर्थापहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाभ्युदीरिताः।
अधौधविध्वंसविधौ पटीयसी-र्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः॥

अनुवाद:
नारद मुनि ने अपने कमंडलु में भरे हुए सभी तीर्थों के जल को श्रीकृष्ण को अर्पित किया। श्रीकृष्ण ने विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर उस जल को ग्रहण किया, जो सभी अशुभताओं का नाश करने में समर्थ है।

श्लोक 19

स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत।
जिघाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम्॥

अनुवाद:
नारद मुनि की अनुमति से श्रीकृष्ण ने स्वर्णमय आसन पर अपना नव-मेघ के समान श्यामल शरीर स्थापित किया। उनका स्वरूप ऐसा लग रहा था जैसे सुमेरु पर्वत की चोटी पर सूर्य की किरणें चमक रही हों।

श्लोक 20

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
वोदोद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण का शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे सूर्य की आभा से प्रकाशित सोने के वस्त्र। उनकी दिव्यता अग्नि के तेज की लपटों के समान समुद्र को आलोकित कर रही थी।

श्लोक 21

रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।
चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरो-स्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥

अनुवाद:
उनके चक्र के तेज से ऐसा लग रहा था जैसे सूर्य की किरणें मेघों के बीच से झांक रही हों। उनकी आभा चंद्रमा की ठंडक से परिपूर्ण थी।

श्लोक 22

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीशुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांसुपाण्डुभिः।
परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण और नारद मुनि का वर्ण चंद्रमा और सफेद कमल के समान एक समान और निर्मल लग रहा था। यह दृश्य अत्यंत मोहक था।

श्लोक 23

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्याजामसंभवा मुदः॥

अनुवाद:
जहाँ नारद मुनि और श्रीकृष्ण का संवाद हुआ, वह स्थान ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे संपूर्ण सृष्टि का विकास और विनाश वहीं हो रहा हो। दोनों का सौहार्द देखकर समस्त देवताओं को आनंद की अनुभूति हुई।

श्लोक 24

निधाघधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकासं यतिमभ्युपेयुषी।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटो भवत्॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण, जो कमलनयन (पुण्डरीकाक्ष) हैं, नारद मुनि के प्रेम और विनम्रता को स्वीकारते हुए अपनी दिव्य आभा में प्रकट हुए। यह दृश्य ऐसा था जैसे तपस्वी सूर्य का प्रकाश प्राप्त कर रहा हो।

श्लोक 25

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः॥

अनुवाद:
नारद मुनि का शुभ्रवर्ण श्रीकृष्ण के श्यामल स्वरूप के साथ ऐसा लग रहा था जैसे सफेद महल पर चंद्रमा की किरणें पड़ रही हों। श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए मधुर वाणी में उनसे संवाद किया।

श्लोक 26

हरत्ययं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालतत्रितयेऽपि योग्यताम्॥

अनुवाद:
श्रीकृष्ण ने कहा: हे मुनि! आपके दर्शन से समस्त शुभ कर्मों का फल प्राप्त होता है। आपके इस आगमन ने यह सिद्ध कर दिया कि शुभ कर्म तीनों काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में फलदायक होते हैं।

श्लोक 27

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुत्तमनुत्तमं तमः॥

अनुवाद:
हे नारद! आपका तेज ऐसा है कि हजारों सूर्य भी उसे नियंत्रित नहीं कर सकते। आपने अपनी दिव्य शक्ति से अज्ञान के घोर अंधकार को समाप्त कर दिया है।

श्लोक 28

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
सदोपयोगे पि गुरुस्त्वमक्षतिः निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव॥

अनुवाद:
आप, हे नारद, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के समान ही हैं, जो सदा प्रजा के कल्याण के लिए तत्पर रहते हैं। आपकी महिमा और ज्ञान गुरु के समान अमूल्य निधि है, जो श्रुतियों (वेदों) की संपदा के संरक्षण का आधार है।

श्लोक 29

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृताथो स्मि निबृंहितांहसा।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीर्गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते॥

अनुवाद:
हे मुनि! केवल आपके दर्शन मात्र से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ। फिर भी, मैं आपकी पवित्र वाणी सुनने का इच्छुक हूँ, क्योंकि श्रेष्ठ की बातों से मन कभी संतुष्ट नहीं होता।

श्लोक 30

गतस्पृहो प्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।
तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्॥

अनुवाद:
हालांकि मैं सभी इच्छाओं से रहित हूँ, फिर भी, आपके आगमन का उद्देश्य जानने की इच्छा रखता हूँ। आपका आगमन हमारे आत्मसम्मान और श्रद्धा को बढ़ाने वाला है।

श्लोक 31

इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया।
त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्य्यं गुरु योगिनामपि॥

अनुवाद:
नारद मुनि ने उत्तर दिया: हे पुरुषोत्तम! आपके द्वारा ऐसा कहना अनुचित है। आप स्वयं साक्षात भगवान हैं। योगियों के लिए भी आपकी सेवा से बड़ा कोई कार्य नहीं है।

श्लोक 32

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निपायसंश्रया॥

अनुवाद:
आप वह आधार हैं, जहाँ मनस्वी (धैर्यवान) व्यक्ति मोक्ष का पथ प्राप्त करते हैं। आपकी कृपा से ही वे संसार के मोह से मुक्त होकर मोक्ष की उच्चतम स्थिति तक पहुँचते हैं।

श्लोक 33

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरूषं पुराविदः॥

अनुवाद:
जो योगी अपने मन को वश में कर लेते हैं, वे आपको अपनी आंतरिक दृष्टि से देखते हैं। जो प्रकृति के विकारों से अतीत हैं, वे आपको पुरातन और अनादि पुरुष के रूप में पहचानते हैं।

श्लोक 34

निवेशयामासिथ हेलयोद्धतं फणाभृतां छाद्नमेकमोकसः।
जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैर्हरीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम्॥

अनुवाद:
आपने गर्व से भरे नागों को भी अपने अधीन कर लिया और तीनों लोकों के स्वामी के रूप में, सृष्टि के स्तंभों को स्थिरता प्रदान की।

श्लोक 35

अनन्यगुर्व्यास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान् गुणैर्भवान् भवेच्छेदकरैः करोत्यधः॥

अनुवाद:
आपकी महानता को समझना अत्यंत कठिन है। आपका मनुष्य रूप देवताओं और असुरों की क्षमताओं को भी तुच्छ बना देता है।

श्लोक 36

लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुराममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।
उदूढलोकत्रितयेन सांप्रतं गुरूर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया॥

अनुवाद:
आपने इस पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए स्वर्ग से अवतार लिया। आपने अपनी शक्ति से तीनों लोकों को स्थिर कर दिया और पृथ्वी का भार स्वयं उठा लिया।

श्लोक 37

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम्॥

अनुवाद:
यदि आप अपनी शक्ति से संसार के पापियों को दंडित करने के लिए पृथ्वी पर अवतार नहीं लेते, तो हमें आपकी महानता और स्वरूप को समझने का अवसर कैसे मिलता?

श्लोक 38

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वंभर विश्वमीशिषे।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः॥

अनुवाद:
आप ही समस्त संसार के पालक हैं। जैसे सूर्य आकाश को स्वच्छ करता है, वैसे ही आप पृथ्वी पर व्याप्त अधर्म को समाप्त करते हैं।

श्लोक 39

करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्त्व स्तवम्।
हरेर्हिरण्याक्षपुरःसरासुर-द्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया॥

अनुवाद:
आपने कंस जैसे राक्षसों का वध किया, जो पृथ्वी पर आतंक फैला रहे थे। आपके इन कार्यों से ही धर्म की प्रतिष्ठा स्थापित हुई।

श्लोक 40

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामसि।
तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुभं मनः॥

अनुवाद:
हे कृष्ण! आप बिना किसी थकान के सहजता से पापियों का नाश करते हैं। फिर भी, मेरा मन आपकी वाणी सुनने की लालसा में बंध जाता है और आपसे संवाद करने की इच्छा करता है।

श्लोक 41

तदिन्द्रसंदिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते।
समस्तकार्येषु गतेन धुर्यतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम्॥

अनुवाद:
हे उपेंद्र! इंद्र द्वारा कहे गए जो वचन मैं आपसे प्रकट कर रहा हूँ, कृपया उसे सुनें। यह संदेश उन सभी कार्यों से संबंधित है, जो सर्पों (पापियों) को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक हैं।

श्लोक 42

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः।
यमिन्द्रशब्दार्थनिसूदनं हरेर्हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते॥

अनुवाद:
हे कृष्ण! दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के जन्म से देवताओं में भय उत्पन्न हुआ। उन्होंने इंद्र के विनाशकारी रूप को चुनौती दी, जिसे हरि (विष्णु) ने समाप्त किया।

श्लोक 43

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नः प्रथमाभिधेयताम्।
भवस्य पूर्वावतारस्तरस्विना मनःसु येन द्युसदां व्यधीयत॥

अनुवाद:
हिरण्यकशिपु ने अपने अहंकार और असुर प्रवृत्ति से देवताओं को लंबे समय तक त्रस्त किया। आपका पूर्व अवतार इस पापी का नाश करने के लिए हुआ।

श्लोक 44

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागहृताः सिषेविरे।
अवापुरारभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः॥

अनुवाद:
हिरण्यकशिपु ने चारों दिशाओं के देवताओं को अपमानित किया। देवता विवश होकर उसके अधीन हो गए। इस प्रकार, उसका नाम और कार्य अपयश फैलाने वाला बन गया।

श्लोक 45

पुराणि दुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कञ्चुकाः।
स्वरूपशोभैकगुणानि नाकिनां गणैस्तमाशङ्क्य तदादि चक्रिरे॥

अनुवाद:
हिरण्यकशिपु के पास पुराणों की शिक्षा, मजबूत दुर्ग, अद्भुत अस्त्र-शस्त्र, और पराक्रमी सेना थी। उसकी शक्ति को देखकर स्वर्ग के देवता भी चिंतित हो गए।

श्लोक 46

स सञ्चरिष्णुर्भुवनान्तराणि यां यदृच्छयाशिश्रियदाश्रयः श्रियः।
अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत्करैस्त्रिसं।ध्यं त्रिदशैर्दिशे नमः॥

अनुवाद:
हिरण्यकशिपु अपनी इच्छानुसार तीनों लोकों में विचरण करता था। उसने देवताओं के मुकुटों से ही अपना आभूषण बना लिया और अपने बल के कारण त्रिलोक पर शासन किया।

श्लोक 47

सटच्छटाभिन्नधनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥

अनुवाद:
हे कृष्ण! आपने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु को अपने तेज नखों से मार डाला। उसके गर्व का नाश आपकी महिमा को और उज्ज्वल बना गया।

श्लोक 48

विनोदनिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः।
स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः॥

अनुवाद:
रावण ने भी अपनी शक्ति और अहंकार से देवताओं को चुनौती दी। वह अत्यंत भयानक राक्षस था जिसने स्वर्ग और पृथ्वी पर भय उत्पन्न किया।

श्लोक 49

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरो तिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः॥

अनुवाद:
रावण, जो तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा रखता था, शिवजी के त्रिशूल का सम्मान करने के बजाय उन्हें चुनौती देने लगा।

श्लोक 50

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।
त्रसत्तुषाराद्रिसुतासंभ्रम-स्वयंग्रहाश्लेषमुखेन निष्क्रयाम्॥

अनुवाद:
रावण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए कैलाश पर्वत को उठाने का प्रयास किया। इस साहस ने उसे केवल शिव की शक्ति को और गहराई से पहचानने के लिए विवश किया।

श्लोक 51

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वशी य इत्थनस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥

अनुवाद:
रावण ने न केवल नंदन वन को नष्ट किया, बल्कि देवताओं की पत्नियों को और उनकी संपत्ति को भी छीन लिया। उसने देवताओं को पराजित करके स्वर्ग पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

श्लोक 52

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम्।
अनुद्रुतः संयति येन केवलं बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम्॥

अनुवाद:
उसकी गतिविधियाँ इतनी सहज और अभिमानपूर्ण थीं कि देवता उसकी गति और बल को देखकर स्तंभित हो गए।

श्लोक 53

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्रशमेरिव यस्य दर्शनम्।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय बिभ्यद् दिवसानि कौशिकः॥

अनुवाद:
उसका तेज ऐसा था कि देवता भी उसे सहन नहीं कर सकते थे। यहां तक कि इंद्र ने भी डरकर स्वर्ण पर्वत की गुफाओं में छिपकर दिन बिताए।

श्लोक 54

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टना-विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः।
जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम्॥

अनुवाद:
हिरण्यकशिपु जैसे असुर वैष्णव चक्र का सामना नहीं कर सकते थे। वह चक्र उनकी गर्वीली गर्दन को तोड़कर उनकी शक्ति को नष्ट कर देता।

श्लोक 55

विभिन्नशङ्खः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।
निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकः प्रकम्पयामास न मानसं न सः॥

अनुवाद:
उसका घमंड और गुस्सा उसे लगातार विचलित करता रहा। वह अपनी शक्तियों के साथ भी मन की शांति प्राप्त नहीं कर पाया।

श्लोक 56

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः।
प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयं प्रपेदिरे॥

अनुवाद:
युद्ध में भेजे गए उसके सैनिक, प्रचंड हुंकार से भयभीत होकर पराजित हो जाते थे। उनकी ताकत को भी भगवत कृपा से रोका गया।

श्लोक 57

परेतभर्तुर्महिषो मुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः।
हृते पि भारे महतस्त्रपाभरा दुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः॥

अनुवाद:
उसकी सेना, जो धनुषधारी और शक्तिशाली थी, भार सहन करने में असमर्थ हो गई। वे अपनी जिम्मेदारी निभाने में असफल रहे और झुके हुए सिर के साथ हार मान गए।

श्लोक 58

स्पृशन् सशङ्कः समये शुचावह स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः।
अधर्मधर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलंचकारास्य वधूरहस्करः॥

अनुवाद:
उसकी पत्नी भी उसके अधर्म से परेशान होकर धर्म के मार्ग पर चली गई। उसके आचरण ने उसे असहनीय बना दिया था।

श्लोक 59

कलासमग्रेणा गृहानमुञ्चता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।
विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्म्साचिव्यमकारि नेन्दुना॥

अनुवाद:
उसके जीवन की विलासिता ने उसकी शक्ति को समाप्त कर दिया। चंद्रमा भी उसकी इच्छाओं को पूरी करने में असमर्थ रहा।

श्लोक 60

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका-चिकीर्षय नूनमेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति॥

अनुवाद:
उसका घमंड और विनाशकारी इच्छाएँ उसे बार-बार पराजय की ओर ले गईं। उसकी शक्ति कभी भी वापस नहीं उभर सकी।

श्लोक 61

निशान्तनारीपरिधानधूनन-स्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।
प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः॥

अनुवाद:
रावण का पापपूर्ण आचरण उसकी पत्नी और अन्य देवियों के प्रति भी अत्याचारपूर्ण था। देवता इस पापपूर्ण आचरण से कांप उठे और भयभीत हो गए।

श्लोक 62

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम्।
बभार वाष्पैर्द्विगूणीकृतं तनु-स्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः॥

अनुवाद:
रावण के घमंड और शक्ति ने उसके पापों को कई गुना बढ़ा दिया। उसका शरीर, जो धुएं की तरह अस्थिर था, उसके पाप के कारण और भी कमजोर हो गया।

श्लोक 63

तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः कटास्थलप्रोषितदानवारिभिः।
गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिरस्य याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः॥

अनुवाद:
उसके अत्याचारों और अहंकार से उत्पन्न हुए अश्रुओं ने दिशाओं को भर दिया। दिशाओं के हाथी (दिग्गज) भी उसके पापों को सहन करने में असमर्थ हो गए।

श्लोक 64

परस्य मर्माविधमुञ्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैर्न भेजे फणिनां भुजङ्गता॥

अनुवाद:
उसके द्वारा किए गए पापों ने प्राणियों के हृदय को विदीर्ण कर दिया। उसके कर्मों ने पापियों को भी विचलित कर दिया, और वे उसकी सेवा करने से कतराने लगे।

श्लोक 65

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिर समेत्य च।
प्रसूनक्लृप्तं ददतः सदर्त्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यदुटुम्बितां दधुः॥

अनुवाद:
उसके साम्राज्य में ऋतुएँ अपने प्राकृतिक सौंदर्य और फल-फूल से भरपूर थीं। लेकिन उसका पापपूर्ण आचरण उन ऋतुओं की शुभ्रता को धूमिल कर देता था।

श्लोक 66

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रवन्दीश्वसितानिलैर्यथा।
सचन्दनाम्भःकणकोमलैस्तथा वपुर्जलार्द्रापवनैर्न निर्ववौ॥

अनुवाद:
उसके शरीर का ताप और उसका अहंकार इतना तीव्र था कि उसे ठंडक देने वाले चंदन और सुगंधित जल की भी कोई आवश्यकता नहीं थी।

श्लोक 67

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।
मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः सदाभ्मानैकघना हि मानिनः॥

अनुवाद:
रावण, जो अमानवीय और अहंकारी था, यह जानते हुए भी कि सीता देवी उसकी मृत्यु का कारण बनेंगी, उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ।

श्लोक 68

स्मरस्यदो दाशरथिर्भवन् भवानमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाविद्धचलज्जलाविलं विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति॥

अनुवाद:
दशरथ पुत्र श्रीराम, रावण का अंत करने के लिए समुद्र को पार कर लंका जाएंगे और उसके पापों का नाश करेंगे।

श्लोक 69

अथोपपतिं छलनापरो परामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।
तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते संप्रति सो प्यसः परैः॥

अनुवाद:
रावण ने छल और पाखंड के साथ अपनी पुनर्जन्म की यात्रा को शुरू किया। अब वह शिशुपाल के रूप में पहचान में आता है।

श्लोक 70

स बालः आसीद्वपुष चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुरुचिस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृच्चकै-रसंशयं संप्रति तेजसा रविः॥

अनुवाद:
शिशुपाल, जो एक समय में चतुर्भुज रूप में पैदा हुआ था और चंद्रमा के समान मुख की चमक रखता था, अब तेज और शक्ति में सूर्य के समान हो गया है।

श्लोक 71

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहापग्रहयोर्यदृच्छया।
दशाननादीनभिराद्धदेवता-वितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ॥

अनुवाद:
यह विधाता (श्रीहरि) हैं, जो देवताओं और असुरों दोनों को उनके कर्मों के अनुसार आशीर्वाद या दंड देते हैं। रावण जैसे असुरों को भी उनकी महानता को चुनौती देने के लिए उनकी कृपा प्राप्त होती है।

श्लोक 72

बलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चिता पुमांसमन्वेति भवान्तरेष्वपि॥

अनुवाद:
शिशुपाल अपने बल और अहंकार के कारण अभी भी संसार पर विजय पाने का प्रयास कर रहा है। उसकी प्रकृति ऐसी है जैसे एक स्त्री, जो हर जन्म में अपने प्रेमी का अनुसरण करती है।

श्लोक 73

तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधे-र्विधेहि कीनाशनिवेशनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्रिमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः॥

अनुवाद:
जो भगवान के आदेश को बार-बार तोड़ता है, ऐसे पापी को समाप्त करना ही धर्म का कर्तव्य है। दुष्टों का नाश धर्मात्माओं के लिए आवश्यक है।

श्लोक 74

हृदयमरिवधोदयादुपोढ-
द्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।
धनपुलकपुलोमजाकुचाग्र-
द्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥

अनुवाद:
अरि (दुष्ट) का वध पुरंदर (इंद्र) के हृदय में दृढ़ता और शक्ति को पुनः स्थापित करता है। यह उसकी शक्ति को और बढ़ाता है, जो दैत्यों के नाश के लिए आवश्यक है।

श्लोक 75

ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-
स्तस्मिन्नुत्पतितं पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।
शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति
व्योम्नीव भृकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्॥

अनुवाद:
जब शार्ङ्गधनुषधारी श्रीकृष्ण ने 'ॐ' उच्चारण के साथ अपनी वाणी प्रकट की, तो उनके मुख से चंद्रमा की आभा प्रस्फुटित हुई। उनकी भृकुटि (भौंहें) क्रोधित मुद्रा में थीं, जो शत्रुओं के विनाश की सूचना दे रही थीं।

इति माघभट्टविरचिते शिशुपालवधमहाकाव्ये कृष्णनारदसंभाषणं नाम प्रथमः सर्गः॥

(इस प्रकार माघ द्वारा रचित शिशुपाल वध महाकाव्य का यह प्रथम सर्ग, जिसमें श्रीकृष्ण और नारद मुनि के बीच संवाद हुआ है, समाप्त होता है।)